International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

अरविन्द के सर्वांग शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त

डॉ. राजेश कुमार
एम.ए. (हिन्दी, पत्रकारिता, शिक्षा, अंग्रेजी), बी.एड., पीएच.डी. (हिन्दी, एजूकेशन)
एसोसिएट प्रोफेसर,
एन.आई.आई.एल.एम. विश्वविद्यालय, कैथल (हरियाणा)

संक्षेप : समकालीन भारत में शिक्षा–दर्शन के क्षेत्र में जितने अधिक तर्कयुक्त और सर्वांग विचार श्री अरविन्द ने उपस्थित किए हैं वैसे किसी भी अन्य शिक्षा–दार्शनिक के लेखों में नहीं मिलते। प्रत्येक शिक्षा–दार्शनिक का शिक्षा–दर्शन उसके सामान्य दर्शन पर आधारित होता है। अस्तु, जिस दार्शनिक का सामान्य दर्शन जितना ही अध्कि सर्वांग होगा, उसका शिक्षा–दर्शन भी उतना ही अधिक सर्वांग बन पड़ेगा। यही कारण है कि श्री अरविन्द का शिक्षा–दर्शन अन्य शिक्षा–दार्शनिकों के विचारों की तुलना में अधिक सर्वांग प्रतीत होता है। शिक्षण–कला शिक्षा–दर्शन के लक्ष्यों को कार्यरूप में परिणत करने का माध्यम है। श्री अरविन्द के दर्शन में राजनीति दर्शन, नीति दर्शन, धर्मदर्शन और योगदर्शन इत्यादि कोई भी पहलू उनके सामान्य दर्शन से अलग नहीं है। यही बात शिक्षा–दर्शन के बारे में भी सत्य है। उन्होंने समस्त ब्रह्माण्ड में जिस सच्चिदानन्द के विकासमान रूप के दर्शन किये, उसी की पूर्ण अभिव्यक्ति को शिक्षा का लक्ष्य माना। उनका दर्शन सब कहीं विकासवादी है, इसलिए उनके शिक्षा–दर्शन में भी विकासवादी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

मुख्य शब्द – सर्वांग शिक्षा, सामंजस्यपूर्ण, आधरभूत सिद्धान्त, जीवनपर्यन्त, आध्यात्मिक, सुषुप्तावस्था, आत्मसाक्षात्कार, श्री अरविन्द जी

भूमिका – शिक्षा मानव–जीवन का प्रमुख अंग है। शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों के स्वाभाविक और सामंजस्यपूर्ण विकास में योग देती है, उसकी वैयक्तिकता का पूर्ण विकास करती है, उसे अपने वातावरण में सामंजस्य स्थापित करने में सहायता देती है, उसे जीवन और नागरिकता के कर्तव्यों और दायित्वों के लिए तैयार करती है और उसके व्यवहार, विचार और दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन करती है जो समाज देश और विश्व के लिए हितकर होता है। ऐडम्स के अनुसार– 'शिक्षा एक ऐसी सुनियोजित प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्तित्व का विकास करने के लिए उस पर दूसरे व्यक्तित्व का मन, वाणी एवं कर्म के द्वारा प्रभाव पड़ता है।' व्यापक अर्थों में यदि शिक्षा की बात करें तो यह एक ऐसी विशाल प्रक्रिया है जिसका क्रम जीवनपर्यन्त चलता है। इसके द्वारा मानव क्रमशः अपने को प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाता है। यह मात्रा विद्यालय या पाठ्यक्रम से संबंध्ति ही नहीं है वरन् जीवन के पल पल का अनुभव है जिससे व्यक्ति सीखता है। श्री अरविन्द ने एक सर्वांग विश्व–दर्शन उपस्थित किया। अस्तु, उनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों को सर्वांग शिक्षा–दर्शन की संज्ञा दी जा सकती है। दार्शनिक विचारों का सबसे बड़ा गुण उनकी आन्तरिक समीचीनता होती है, अन्यथा प्रत्येक दार्शनिक अपने अनुभवों के आधर पर दार्शनिक विचार उपस्थित करता है। अनुभव तर्क का विषय नहीं है, तर्क अनुभव पर आधरित होते हैं। अस्तु

भिन्न–भिन्न दार्शनिकों ने जो जीवन का भिन्न–भिन्न अनुभव किया उसका खण्डन नहीं किया जा सकता। विवाद तो केवल इस बात पर हो सकता है कि उनके विभिन्न विचारों में कहीं पर असामंजस्य या परस्पर विरोध तो नहीं है। परन्तु क्या इसका अर्थ यह हुआ कि सभी शिक्षा–दार्शनिकों के विचार समान रूप से ग्राह्य कहे जाने चाहिए? विभिन्न दार्शनिकों के विचारों में उनके अनुभवों की एकांगिता के कारण एकांगीपन पाया जाता है। अस्तु, इस सम्बन्ध में सत्य तक पहुँचने के लिए विभिन्न अनुभवों को एक सर्वांगपूर्ण में बांधकर देखने से अध्कि व्यापक सत्य समझ में आ सकते हैं। सत्य के क्षेत्र में व्यापकता का गुण उच्च स्तर पर सूचक है। वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक कोई भी सत्य जितना ही अध्कि व्यापक है, उसको उतना ही उच्च स्तर का सत्य माना जायेगा। सर्वांग दृष्टिकोण में उच्च स्तर पर निम्न का निराकरण नहीं करता, बल्कि उसका समावेश कर लेता है। इस प्रकार सर्वांग शिक्षा–दर्शन की यह विशेषता है कि उसमें अन्य सभी शिक्षा–दार्शनिकों के सत्य का समावेश होता है। स्पष्ट है कि वह अधिक व्यापक और उच्च स्तर के सत्य का प्रतिपादन करता है। चूँकि मानव–ज्ञान सीमित है, इसलिए कोई भी वास्तविक दृष्टिकोण कितना भी सर्वांग होने पर भी पूर्णतया सर्वांग नहीं कहा जा सकता। इसलिए मानव–विचारों में सतत प्रगति होती रहती है। श्री अरविन्द का शिक्षा–दर्शन कहाँ तक सर्वांग है, यह विवादास्पद विषय हो सकता है, क्योंकि अन्य विचारकों के समान मानव होने के कारण उनके विचारों में भी कहीं न कहीं कोई कमी दिखाई जा सकती है। केवल समकालीन भारत में नहीं, बल्कि विश्व के इतिहास में जितना अध्कि सर्वांग शिक्षा–दर्शन श्री अरविन्द ने उपस्थित किया है, उतना कदाचित् ही किसी शिक्षा–दार्शनिक ने उपस्थित किया हो।

आत्मा में ज्ञान :

श्री अरविन्द की यह धारणा थी कि जीव की आत्मा में ज्ञान सदा सुषुप्तावस्था में गुप्त रहता है। शिक्षा का आधर या वाहन अथवा यन्त्र अन्तःकरण है अतः अन्तःकरण की संरचना पर उन्होंने गम्भीर विचार किया है। उनके अनुसार अन्तःकरण के चार पटल होते हैं। प्रथम पटल है चित जो अन्य तीन पटलों का आधर है। जब हम कोई बात याद करते हैं तो वह छनकर चित में एकत्रा होती है। यह भूतकालिक मानसिक संस्कार है। चित रूपी स्मृति कोषों से ही क्रियाशील स्मृति कभी–कभी कुछ चीजों को चुन लेती है। यह चुनाव उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त हो सकता है, अतः इसके प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

अन्तःकरण का दूसरा पटल 'मानस' है। इसमें अन्य पटल एकत्रा होते हैं और इसे ही दर्शन की भाषा में मस्तिष्क कहा जाता है। इसका कार्य ज्ञानेन्द्रियों से प्रत्ययों को ग्रहण करना और उसे विचारों में परिणत करना है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सम्बन्धी सूचना ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होती है। इन सूचनाओं को विचारों में परिवर्तित कर देना मस्तिष्क का काम है। मस्तिष्क स्वयं भी प्रत्ययों एवं प्रतिमानों को ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त यह स्वयं भी एक उपकरण है। उत्तम विचार के लिए पाँचों ज्ञानेन्द्रियों एवं मस्तिष्क का प्रशिक्षित होना आवश्ययक है। इन छहों उपकरणों को सक्षम बनाना है।

अन्तःकरण का तीसरा पटल बुद्धि है। मस्तिष्क जिस ज्ञान को प्राप्त करता है उसे व्यवस्थित करने का वास्तविक यन्त्रा बुद्धि है, यह विचार–शक्ति का पटल है। शिक्षण के लिए बुद्धि का सर्वाधिक महत्त्व है। इसमें रचनात्मक, विश्लेषणात्मक, संश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक शक्तियाँ निहित होती हैं। बुद्धि दो भागों में विभक्त है। इसका प्रथम पक्ष या दाहिना हाथ सोचने, विचारने, निर्णय करने, स्मरण करने, आदेश देने, अवलोकन करने एवं परिकल्पना करने की शक्तियों से सम्पन्न होता है और दूसरा पक्ष या बायां हाथ

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शक्तियों से युक्त होता है। बुद्धि का दूसरा पक्ष अन्तर बताने, अन्वेषण करने एवं तर्क–वितर्क के बाद परिणाम निकालने में कुशल होता है। दायाँ भाग ज्ञान का अध्ष्ठाता है, बायाँ भाग ज्ञान का सेवक मात्रा है। इन शक्तियों से तर्कपूर्ण विचार सम्भव है अतः बुद्धि के दोनों भागों को प्रशिक्षित करना आवश्यक है।

अन्तःकरण का चतुर्थ पटल सत्य के अन्तर्दृष्टिपरक प्रत्यक्षीकरण की शक्ति है। इससे ज्ञान का प्रत्यक्ष दर्शन होता है और इसके आधर पर व्यक्ति भविष्य कथन करने में समर्थ होता है। मस्तिष्क की यह शक्ति अभी पूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकी। यह विकास की अवस्था में है। किन्तु मानव के अन्तःकरण में यह शक्ति है और यदि इस दुर्लभ शक्ति का विकास किया जाए तो मानवता की अनेक समस्याओं का समाधन मिल जाए। मानव की तार्किक बुद्धि अपनी चंचलता एवं पक्षपातपूर्णता के कारण इस शक्ति को विकृत कर देती है। इस शक्ति के विकास में अभी तक बहुत कम ध्यान दिया गया है अतः शिक्षकों को इस ओर ध्यान देना आवश्यक है।

शिक्षा–दर्शन :

श्री अरविन्द का शिक्षा–दर्शन कुछ मौलिक सिद्धान्तों पर आधरित है। सबसे पहले बालक को स्वयं जानना और विकसित होना है, शिक्षक केवल उसका निर्देशन और सहायता कर सकता है। दूसरे, शिक्षा शिक्षार्थी के विशिष्ट गुणों, सामर्थ्यों, विचारों और सद्गुणों के अनुरूप होनी चाहिए। व्यक्ति हो अथवा समूह, स्वर्ध्म सब कहीं विकास और वृद्धि का मूल मंत्र है, दूसरों को अंधनुकरण सदैव हानिकारक है।

शिक्षा का प्रमुख सिद्धान्त श्री अरविन्द के शब्दों में–'' शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य विकासवान आत्मा को अपने में से सर्वोत्तम को बाहर निकालने में और शुभ कार्यों में प्रयोग के लिए उसे पूर्ण बनाने में सहायता देना चाहिए।'' अस्तु, प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय को अपनी प्रकृति के अनुसार शिक्षा–व्यवस्था का निर्माण करना चाहिए। यह व्यक्ति और समाज दोनों की पूर्णता के लिए आवश्यक है। प्राचीन यूनानी और भारतीय शिक्षा–दार्शनिकों ने इसी प्रकार का मत उपस्थित किया था। आत्मसाक्षात्कार को अनेक दार्शनिकों ने शिक्षा का लक्ष्य माना है, यद्यपि मानव आत्मा की सही प्रकृति को बहुत कम विचारक समझ सके हैं। मानव आत्मा मनुष्य के भौतिक, प्राणात्मक और मानसिक ढाँचे के पीछे सदैव उपस्थित यथार्थ आत्मा है। शिक्षा का लक्ष्य इसी को अभिव्यक्त करना होना चाहिए, जिससे कि मनुष्य में जो कुछ सर्वोत्तम है उसका विकास हो सके।

शिक्षक कोई निर्देशक या काम लेने वाला स्वामी नहीं है, वह एक सहायक एवं पथ प्रदर्शक है। उसका काम सुझाव देना है, थोपना नहीं। वह सचमुच विद्यार्थी के मानस को प्रशिक्षित नहीं करता। वह उसे केवल यह बतलाता है कि अपने ज्ञान के उपकरणों को कैसे पूर्ण बनाया जाय और वह उसे इस कार्य में सहायता देता और प्रोत्साहित करता है। वह उसे ज्ञान नहीं देता, वह उसे यह बतलाता है कि अपने लिए ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाय। वह अंदर स्थित ज्ञान को प्रकट नहीं करता। वह केवल यह दिखलाता है कि वह कहाँ स्थित है और उसे ऊपरी तल पर आने के लिये कैसे अभ्यस्त किया जा सकता है। वह विभाजन जो इस सिद्धान्त को केवल वयस्क और किशोर मन की शिक्षा के लिये आरक्षित रखता है और बालक के लिये उसे लागू करने से इंकार करता है वह एक रूढ़िवादी और नासमझ सिद्धान्त है। बालक हो या वयस्क

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

लड़का हो या लड़की, शिक्षा देने का एक ही अच्छा सिद्धान्त है। अवस्था भेद आवश्यक सहायता और पथ प्रदर्शन की मात्राा को घटा–बढ़ा सकता है। इससे इसकी प्रकृति नहीं बदलती।

दूसरा सिद्धान्त यह है कि मन के विकास में स्वयं उसी की सलाह ली जाए। बच्चे को ठोक पीटकर माता–पिता या अध्यापक के चाहे हुए रूप में गढ़ना एक अज्ञानपूर्ण और बर्बर अंधविश्वास है। उसे अपनी प्रकृति के अनुसार अपना विस्तार करने को प्रेरित करना चाहिए। माँ–बाप के लिये इससे बड़ी कोई भूल नहीं हो सकती कि वे पहले से ही तय कर लें कि उनका बेटा अमुक गुण, अमुक क्षमताएँ, विचार या विशेषताएँ विकसित करेगा या उसे पहले से ही निश्चित अमुक प्रकार की जीविका के लिये तैयार किया जाए। प्रकृति को अपना स्वधर्म छोड़ने के लिये बाध्य करना उसे स्थायी क्षति पहुँचाना है, उसके विकास को विकृत करना और उसकी पूर्णता को विरूप कर देना है। यह मानव आत्मा पर स्वार्थपूर्ण अत्याचार है, राष्ट्र पर एक आघात है जिसके कारण वह मनुष्य के सर्वोत्तम कार्य के लाभ से वंचित हो जाता है और उसके बदले अपूर्ण, कृत्रिम, घटिया, औपचारिक और सामान्य चीज स्वीकार करने के लिये बाध्य होता है। हर एक में कुछ दिव्य अंश होता है, कुछ ऐसा जो उसका अपना होता है। भगवान स्वीकार करने या त्याग देने के लिये एक क्षेत्र देते हैं, वह चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो, जिसमें वह पूर्णता और शक्ति पा सकता है। मुख्य काम है खोजना, विकसित करना और उसका उपयोग करना। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए अंतरात्मा की इस बात में सहायता करना कि वह अपने अंतर की अच्छी से अच्छी चीज को बाहर लाये और उसे किसी श्रेष्ठ एवं उदार उपयोग के लिए पूर्ण बनाये।

शिक्षा का तीसरा सिद्धान्त है ''निकट से दूर की ओर, वर्तमान से भविष्य की ओर चलना है।'' प्रायः हमेशा ही मनुष्य के स्वभाव का आधर उसकी आत्मा के अतीत के अतिरिक्त बहुत–सी चीजों पर निर्भर होता है जैसे– उसकी आनुवंशिकता, उसका पास–पड़ौस, उसकी राष्ट्रीयता, उसका देश, वह धरती जहाँ से वह आहार पाता है, वह हवा जिसमें वह साँस लेता है, वे दृश्य, वे आवाजें और वे आदतें जिनके लिये वह अभ्यस्त है। ये चीजें उसके जाने बिना, लेकिन इस कारण कम बल के साथ नहीं, उसको ढालती हैं। और हमें वहीं से शुरू करना चाहिये। हमें स्वभाव को उस जमीन में से जड़ों से नहीं उखाड़ देना चाहिये जहाँ उसे पनपना है। मन को ऐसे बिम्बों और ऐसे जीवन के विचारों से नहीं घेर देना चाहिये जो उस जीवन के विरोधी हों जिनमें उसे हिलना डुलना है। अगर बाहर से कोई चीज लानी है तो मन पर जोर से आरोपित न की जाय, उसे भेंट की जा सकती है। सच्चे विकास के लिये ये जरूरी शर्त है : स्वाभाविक और मुक्त वृद्धि।

विद्यालय में पाठ्यक्रम, शिक्षा का माध्यम, सामान्य वातावरण, सभी कुछ शिक्षार्थी के लिए स्वाभाविक होना चाहिए। केवल शिक्षा का आदर्श ही नहीं, बल्कि उसका स्वरूप भी स्वदेशी होना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली विशिष्ट राष्ट्र के भूत पर आधरित होनी चाहिए और राष्ट्रभाषा के माध्यम से ही चलायी जानी चाहिए। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि हम दूसरों से कुछ भी ग्रहण न करें। वास्तव में दूसरों से ग्रहण करना स्वदेशी को छोड़ना नहीं है क्योंकि मानव मात्रा में सब कहीं गुणों, शक्तियों और सामर्थ्यों, इच्छाओं और आकांक्षाओं और शारीरिक तथा मानसिक रचना में मौलिक समानताएँ हैं। अस्तु, श्री अरविन्द पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञान और आंग्ल भाषा का बहिष्कार नहीं चाहते, किन्तु उसको शिक्षा–प्रणाली में उचित स्थान देने के समर्थक हैं। उनके अपने शब्दों में– ''सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा का लक्ष्य और सिद्धान्त निश्चय ही

आधुनिक सत्य और ज्ञान की अवहेलना करना नहीं, बल्कि हमारी नींव को हमारे अपने विश्वास, हमारे अपने मस्तिष्क, हमारी अपनी आत्मा पर आधरित करना है।'' अन्य समकालीन भारतीय दार्शनिकों – गाँधी, टैगोर, विवेकानन्द और राधकृष्णन ने भी शिक्षा में इस सिद्धान्त का समर्थन किया है।

श्री अरविन्द के शब्दों में, ''मस्तिष्क को ऐसा कुछ भी नहीं सिखाया जा सकता जो कि जीव की आत्मा के अनावरण में सुप्त ज्ञान के रूप में पहले से ही गुप्त न हो।'' शिक्षा का लक्ष्य नये सिरे से कुछ निर्माण करना नहीं है, उसे तो मनुष्य में पहले से ही सुप्त शक्तियों का अनावरण और उनका विकास करना है। कोई भी परिवेशवादी भले ही शिक्षा में परिवेश के महत्त्व के विषय में कुछ भी कहे, किन्तु परिवेशवाद शिक्षा के लिए कभी भी ठोस आधार–भूमि नहीं हो सकता। शिक्षा–सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित होने चाहिए। परिवेशवादियों की यह भूल है कि वे मानव–प्राणी को मिट्टी का माधे मात्रा समझते हैं जिसको कोई भी रूप दिया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से परिवेशवाद के इस दावे को खण्डित किया जा चुका है और यह स्थापित हो चुका है कि परिवेश के प्रभाव से आतंकित और नैसर्गिक मानव–प्रकृति को केवल एक सीमा तक ही परिवर्तित किया जा सकता है। मनुष्य संसार में कुछ विशिष्ट ढाँचों, योग्यताओं और सामर्थ्यों को लेकर आता है और यद्यपि उनके विकास की सम्भावनाएँ अनन्त हैं, किन्तु यथार्थ रूप में कुछ विशिष्टि सीमाओं में ही इनको परिवर्तित किया जा सकता है। अस्तु, मानव की शिक्षा उसकी मनोवैज्ञानिक प्रकृति के अनुरूप होनी चाहिए।

निष्कर्ष : श्री अरविंद का सर्वांग शिक्षा दर्शन बालक के सर्वांगीण विकास की ओर इंगित करता है। जिसके लिए पूर्व में चल रही शिक्षा–व्यवस्था में कुछ आमूल–चूल परिवर्तन करने होंगे, क्योंकि वर्तमान सूचना प्रौद्योगिकी युग में बालक पुरानी शिक्षा व्यवस्था से वैश्वीकरण के सम्प्रत्यय को प्राप्त नहीं कर सकेगा और चल रही पुरानी व्यवस्था में 'बालक को एक नये युग में प्रवेश' जैसी धरणा को ध्यान में रखकर उसके पाठ्यक्रम, शिक्षण–विधियों, मूल्यांकन व्यवस्था तथा उसको प्रदान किए जाने वाले अनुभवों को एक नया स्वरूप प्रदान करना होगा जिससे आने वाले भविष्यगामी समस्याओं का वह समाधान कर सके।

श्री अरविन्द जी भारत की प्रचलित शिक्षा के विरोधी थे। वे कहते थे कि स्वतन्त्राता प्राप्त करने के पश्चात भारतीय शिक्षा की रूपरेखा में परिवर्तन तो अवश्य आ गया है। परन्तु वह अब भी बालकों के मस्तिष्क, आत्मा तथा चरित्र एवं राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुसार नहीं है। उनके मतानुसार हमारी शिक्षा को आधुनिक जीवन की आवश्यकतानुसार होना चाहिए। दूसरे शब्दों में श्री अरविन्द जी ऐसी शिक्षण पद्धति के पक्ष में थे जो बालकों को कर्मठ नागरिक बनाये तथा आधुनिक युग की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ हो। वे स्वयं लिखते हैं –

''सच्ची शिक्षा को मशीन से बना हुआ सूत नहीं होना चाहिए अपितु इसको मानव के मस्तिष्क तथा आत्मा की शक्तियों का निर्माण अथवा जीवित उत्कर्ष करना चाहिये।''

सन्दर्भ

1. श्री अरविन्द, **ए सिस्टम आपफ नेशनल एजुकेशन**

2. श्री अरविन्द, **द सिन्थेसिस ऑफ योग, श्री अरविन्द लाइब्रेरी**, न्यूयार्क (1950)

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

3. **शिक्षा के आयाम**, (श्री अरविन्द के लेखों से संकलित) श्री अरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी।

4. श्री अरविन्द, **ए सिस्टम ऑव नेशनल एजूकेशन**, आर्य पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता।

5. डॉ. इन्द्रसेन द्वारा संकलित **इन्टीग्रल, एजूकेशन**, पांडिचेरी

6 श्री अरविन्द, **ऐसज ऑन द गीता**, भाग–2, आर्य पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता।